इकाई 13 भारत में कथा-कहानी

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 संस्कृत में 'कथा' परम्परा का आरम्भ और विकास

13.3 जातक कथाएँ

13.4 बृहद्कथा

13.5 'पंचतन्त्र' और 'हितोपदेश'

13.6 सुबन्धु कृत 'वासवदत्ता'

13.7 बाणभट्ट कृत 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित'

138 दंडी कृत 'दशकुमारचरित'

13.9 संस्कृत कथा–परम्परा का अवसान

13.10 सारांश

अभ्यास

13.0 उद्देश्य

यह एम. ए. हिन्दी के द्वितीय वर्ष के कहानी से सम्बन्धित मॉड्यूल के पाठ्यक्रम 'कहानी : स्वरूप और विकास' से सम्बन्धित खंड–4 की 13वीं इकाई है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भारत में कथा–परम्परा के आरम्भ और विकास की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।
- 'जातक कथाओं' से परिचय स्थापित कर सकेंगे/सकेंगी।
- 'बृहद् कथा' के बारे में जान सकेंगे/सकेंगी।
- 'पंचतन्त्र', 'हितोपदेश' आदि के सम्बन्ध में विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे/सकेंगी।

13.1 प्रस्तावना

इस इकाई में भारत में 'कथा' के विकास की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है। भारत में 'कथा' का आरम्भ वेदों से ही हो जाता है। उसके बाद उपनिषदों, पुराणों, महाभारत, जातक कथाओं, गुणाढ्य कृत 'बड्डकहा'(सं. अनुवाद 'बृहद्कथा'), 'पंचतन्त्र' आदि के रूप में उसका विकास देखा जा सकता है। 'बड्डकहा'('बृहद्कथा') में पहली बार लौकिक कथाओं का विशाल पैमाने पर संग्रह हुआ। इसके मूल रचयिता तो भगवान शिव माने जाते हैं, पर उसे लिखित रूप देने और प्रचारित करने वाले गुणाढ्य माने जाते हैं। गुणाढ्य ने उसे पैशाची प्राकृत में लिखा था, जिसमें सात लाख श्लोक थे। दुर्भाग्यवश उसके छह लाख श्लोक तो नष्ट हो गये, पर जो एक लाख श्लोक बच गये उनका संस्कृत

में अनुवाद हुआ। संस्कृत में हुए प्रारम्भिक अनुवाद भी आज उपलब्ध नहीं हैं। दसवीं शताब्दी में सोमदेव ने इन कथाओं का संग्रह 'कथासरित्सागर' के नाम से प्रस्तुत किया, जो संस्कृत में तो उपलब्ध है ही, उसके साथ साथ हिन्दी में भी उसके सम्पूर्ण और संक्षिप्त रूपान्तर प्राप्त होते हैं।

13.2 संस्कृत में 'कथा' परम्परा का आरम्भ और विकास

संस्कृत में कथा–परम्परा का आरम्भ वेदों से ही हो जाता है। उपनिषद् और पुराण उसकी अगली कड़ी हैं। महाकाव्य के रूप में वाल्मीकि कृत 'रामायण' में राम–कथा प्रस्तुत की गयी है।

इसे राम के पुत्रों लव–कुश ने अयोध्या की राजसभा में सुनाया था। 'महाभारत' पहली कथा या आख्यान है, जिसके 'लिखित' होने का प्रमाण मिलता है। 'महाभारत' का रचना–काल ई.पू. सन् 800–900 माना जाता है। यों तो इसकी मुख्य कथा शान्तनु–वंशज पांडवों और कौरवों के सम्बन्धों और युद्ध की है, पर मुख्य कथा के साथ इतने उपाख्यान जुड़े हुए हैं कि इसे उपाख्यानों का महाकोश भी कहा जा सकता है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थों का वर्णन किया गया है। इसे भारतीय इतिहास का जाज्वल्यमान दीपक कहा गया है।

लोमहर्षण–पुत्र उग्रश्रवा ने, जो पुराणों के विद्वान और कथावाचक थे, नैमिषारण्य में कुलपति महर्षि शौनक के बारह वर्षों तक जारी यज्ञ–सत्र में उपस्थित ब्रह्मर्षियों को यह कथा सुनायी थी। उन्होने स्वयं कृष्ण द्वैपायन व्यास द्वारा निर्मित महाभारत की कथा महर्षि वैशम्पायन से सुनी थी, जिसे उन्होंने जनमेजय के सर्प यज्ञ में सुनायी थी। उग्रश्रवा जी के अनुसार महाभारत की रचना करके व्यास जी यह विचार करने लगे कि अब शिष्यों को इस ग्रन्थ का अध्ययन कैसे कराऊँ। जन में इसका प्रचार कैसे हो? व्यास जी का यह विचार जानकर ब्रह्मा जी उनके आश्रम पधारे। व्यास जी ने ब्रह्मा जी से अपने महाकाव्य की रचना की बात बतायी। उन्होंने महाभारत के कथ्य का वर्णन किया। उनके अनुसार इस ग्रन्थ में इतिहास और पुराणों का मन्थन करके उनका प्रशस्त रूप प्रकट किया गया है। भूत, वर्तमान और भविष्य काल की इन तीनो संज्ञाओं का भी वर्णन हुआ है– इतिहासपुराणानामुन्मेषं निर्मितं चयत्। ब्रह्मा जी ने ही व्यास जी को अपना काव्य लिखवाने के लिए गणेश जी को स्मरण करने को कहा। व्यास जी के स्मरण करते ही गणेश जी वहाँ पहुँच गये। व्यास जी ने उनसे अपने ग्रन्थ का––जिसकी रचना उन्होंने मन ही मन कर ली थी––लेखक बन जाने का आग्रह किया। गणेश जी ने उनका अनुरोध तो स्वीकार कर लिया, पर एक शर्त भी लगा दी। वह शर्त यह थी कि उन्हें अपना ग्रन्थ बिना कहीं रुके लिखाना होगा ! यदि वे कहीं रुक गये तो वे लिखना छोड़ कर चल देंगे। व्यास जी ने भी एक शर्त रख दी कि आपको श्लोकों का अर्थ समझ कर ही लिखना होगा ! इसी शर्त पर महाभारत लिखा गया।

उग्रश्रवा जी के अनुसार इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थों का वर्णन किया गया है। यह भारत इतिहास का जाज्वल्यमान दीपक है। यह मोह का अन्धकार मिटा कर लोगों के अन्तःकरण रूप सम्पूर्ण अन्तरंग गृह को भलीभाँति ज्ञानालोक से प्रकाशित कर देता है।

13.3 जातक कथाएँ

'कथा' को 'उपदेश' या 'शिक्षा' से जोड़ने का इतिहास भी कदाचित् कथा की तरह ही पुराना है। सम्भव है कि आदि मानव भी शिकार की कथाएँ सुनाकर अपने बच्चों को सम्भावित खतरों से बचने का उपदेश देता रहा हो। ज्ञात भारतीय परम्परा में सर्वप्रथम वेदों में कथा का उपयोग ज्ञान या चिन्तन को सुग्राह्य बनाने के लिए किया गया है। उपनिषदों में इस परम्परा का विकास देखा जा सकता है। पर उपदेश या शिक्षा के लिए बड़े पैमाने पर कथा के उपयोग का सबसे पुराना उदाहरण जातक कथाएँ हैं। जातक कथाओं में कथा सुनाने वाले स्वयं भगवान बुद्ध हैं और श्रोता भिक्षु–गण। भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को अपने पूर्वजन्म की कथाएँ सुनायी थीं, जिनका संकलन बाद में किसी समय हुआ। भगवान बुद्ध का परिनिर्वाण ई. पू. 544 या 543 में माना जाता है। अतः अनुमान किया जाता है कि इन कथाओं का संकलन ई. पू. छठी शताब्दी में कभी हुआ होगा। इन कथाओं का हिन्दी रूपान्तर भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने किया है, जो छह जिल्दों में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित हैं। इसमें कुल 547 कथाएँ संकलित हैं। सारी कथाएँ अलग अलग हैं। इसमें कथा के भीतर कथा या कथाओं की योजना नहीं की गयी है। इसकी अधिकतर कथाओं में जीवन में धैर्य से काम लेने, असफल होने पर भी प्रयत्न न छोड़ने, वेश्याओं और धूर्तों से सावधान रहने, प्रिय से वियोग हो जाने पर भी आशा का त्याग न करने, अधिक सन्तान पैदा न करने, मन को पवित्र रखने, शुभ संकल्प के साथ उद्यम करने, साहसी बनने, राजपुरुषों से मित्रता करने में सावधानी बरतने, स्त्रियों का सहेली के पति से न मिलने, बल के अपर्याप्त होने पर युक्ति से काम लेने, भाग्य के अनुकूल होने पर पौरुष आजमाने, अपने पूर्वजन्म के शुभाशुभ कर्मों पर विश्वास करने, पराक्रमी व्यक्ति के सदा विजयी होने आदि के उपदेश दिये गये हैं। जातक कथाओं की भाषा पालि है। इसमें उपदेश–वचन तो श्लोक में निबद्ध हैं, पर कथा गद्य में कही गयी है।

13.4 बृहद्कथा

भारतीय परम्परा में भगवान शिव सबसे पुराने 'कथक' (कथा कहने वाले के लिए इस शब्द का प्रयोग 'कथा सरित्सागर' में हुआ है) माने जाते हैं। वे नयी नयी कथाओं के जनक के रूप में प्रसिद्ध हैं। महाकवि सोमदेव रचित 'कथा सरित्सागर' के आरम्भ में यह उपकथा दी गयी है कि पार्वती शिव से ऐसी कथा सुनाने का अनुरोध करती हैं जो 'किसी ने न सुनी हो और जो किसी और को न आती हो।' कथा ऐसी हो कि 'मन लगा रहे। बड़ी भी हो। इतनी बड़ी कि सुनते–कहते गणनातीत समय निकल जाए।' पार्वती के अनुरोध पर शिव उन्हें विद्याधरों की 'बृहत्कथा' सुनाने को तैयार हो जाते हैं। पार्वती हठ करती हैं कि वे अकेली ही कथा सुनेंगी। शिव मान जाते हैं। वे पार्वती को साथ लेकर कैलाश पर्वत की अपनी गुफा में चले जाते हैं और कथा सुनाना आरम्भ करते हैं। गुफा के द्वार पर नन्दी पहरे के लिए बिठा दिये जाते हैं। किसी को भी भीतर जाने की अनुमति नहीं। पर कथा सुनने के लोभ में शिव का एक गण, पुष्पदन्त, नन्दी को चकमा देकर, योगशक्ति से अदृश्य होकर, गुफा में प्रवेश कर जाता है। कथा आरम्भ होती है। दिन पर दिन, महीने पर महीने, बरस पर बरस बीतते जाते हैं। कथा ऐसी कि समाप्त होने को न आए। कथा पूरी होने पर पार्वती तृप्त और मुदित होती हैं। पर उनके साथ पुष्पदन्त भी पूरी कथा सुन लेता है। शामत का मारा वह यह कथा अपनी पत्नी जया को भी सुना देता है। जब पार्वती को यह बात मालूम होती है तो वे क्रोध से तिलमिला उठती हैं। उनके

क्रोध को देखकर पुष्पदन्त की तो घिग्घी ही बँध जाती है। उसका मित्र माल्यवान देवी से उसे क्षमा कर देने की प्रार्थना करता है। पर पार्वती को अपमान का गहरा आघात लगा है। वे पुष्पदन्त और माल्यवान दोनों को मनुष्य योनि में जन्म लेने का शाप दे डालती हैं। यह सुनकर जया भागती हुई आती है और रो–रो कर पार्वती से दया की भीख माँगती है। दोनों शापग्रस्त गण भी माता के चरणों पर माथा टेक देते हैं। पार्वती द्रवित तो हो जाती हैं, पर शाप तो शाप है। वे शापमुक्ति का उपाय बताते हुए कहती हैं कि सुप्रतीक नामक एक यक्ष शापग्रस्त होकर काणभूति के नाम से विन्ध्य के वन में पिशाच बन कर रहता है। यदि पुष्पदन्त मनुष्य योनि में यह कथा उसे सुना दे तो वह शापमुक्त हो जाएगा। फिर काणभूति माल्यवान को कथा सुना कर और माल्यवान काणभूति से यह कथा सुन कर मनुष्य योनि में इसका प्रचार करने पर शापमुक्त हो जाएँगे।

पुष्पदन्त मानव योनि प्राप्त कर पाटलिपुत्र के राजा नन्द का मन्त्री वररुचि बनता है और शापग्रस्त यक्ष (काणभूति) को शिव द्वारा सुनी हुई कथा सुनाता है। काणभूति शापमुक्त होकर वररुचि की प्रशंसा करता है और उसे 'शिव का अवतार' कहता है, क्योंकि शिव के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसी कथा नहीं सुना सकता। वररुचि काणभूति को वही कथा अपने मित्र माल्यवान, तो गुणाढ्य नाम से पृथ्वी पर जन्म ले चुका है, सुनाने को कहता है। गुणाढ्य राजा सातवाहन का मन्त्री था, पर किसी कारण सम्प्रति वनवास झेल रहा है। काणभूति उसे वररुचि से सुनी 'बृहत्कथा' सुनाता है, जिसे सुन कर गुणाढ्य उसे सात लाख छन्दों में, पैशाची भाषा में, लिख डालता है। उस घोर वन में स्याही न मिल पाने के कारण गुणाढ्य को अपने खून से ही वह विशाल कथा लिखनी पड़ती है। लिखते लिखते जब वह अपनी कथा पढ़ने लगता, तो उसे सुनने के लिए आकाश में विद्याधरों का जमघट लग जाता। गुणाढ्य कृत 'बृहत्कथा' को देख लेने के बाद काणभूति की शापमुक्ति हो जाती है। अब गुणाढ्य के सामने 'बृहत्कथा' के प्रचार की समस्या उपस्थित होती है, जो उसकी शाप–मुक्ति की शर्त है। वह उसे लेकर राजा सातवाहन की राजधानी प्रतिष्ठानपुर पहुँचता है और अपने शिष्यों द्वारा अपना ग्रन्थ सातवाहन के अवलोकनार्थ भेजता है। पर राजा उसके बाह्य रूप को देखकर ही वितृष्णा से भर जाता है और धिक्कारते हुए ग्रन्थ को लौटा देता है। यह सुनकर गुणाढ्य बहुत निराश होता है। वह नगर के बाहर स्थित बगीचे के पास ही एक ऊँची चट्टान पर बैठ जाता है। नीचे एक अग्निकुंड तैयार किया जाता है। जब कुंड में आग धधकने लगती है तब गुणाढ्य अपनी कथा पढ़ना आरम्भ करता है। आसपास वन में रहने वाले मृग और पशुपक्षी उसे सुनने के लिए एकत्र हो जाते हैं। उन्हें कथा सुनाते हुए गुणाढ्य सुनाए हुए एक एक पन्ने को आग में झोंकता जाता है। कथा सुनते हुए वन के पशु–पक्षी आहार त्याग देते हैं और स्तब्ध होकर आँखों में आँसू भर कर कथा सुनते रहते हैं। इसका पता चलते ही सातवाहन गुणाढ्य के पास पहुँचता है और अपनी भूल स्वीकार कर उसके चरणों में गिर जाता है। पर तब तक उस 'बृहत्कथा' के छह खंड अग्नि की भेंट चढ़ चुके होते हैं। केवल सातवाँ खंड बचा है। उसमें राजा नरवाहन दत्त की कथा है। सातवाहन को एक लाख श्लोकों वाली यही कथा प्राप्त होती है। गुणाढ्य की शापमुक्ति हो जाती है। सातवाहन उस कथा का अपनी भाषा में रूपान्तर कराता है और उसका प्रचार सारे 'भूमंडल' में हो जाता है।

इस कथा से 'कथा' की कई विशेषताएँ सामने आती हैं। पहली यह कि शिव भारतीय परम्परा के आदि 'मौखिक' कथाकार हैं। दूसरी यह कि 'कथा' में कौतूहल का तत्त्व इतना अधिक होता है कि पार्वती के रूप में श्रोता उसे बरसों सुनता रहता है और अन्त में 'तृप्त और मुदित' होता है। तीसरी यह कि उसमें 'नयापन' होना चाहिए ; सुनी हुई कथा को

सुनना उतना आकर्षक नहीं होता। यदि कोई कथक पहले सुनी हुई कथा सुनाता है तो श्रोता को उसमें रुचि नहीं होती। श्रोता नयी कथा को भारी खतरा उठाकर भी सुनने का प्रयास करता है। चौथी यह कि शापग्रस्त व्यक्ति उसे सुनकर शापमुक्त हो जाता है। यह 'कथा' का मूल्य पक्ष है। कथा प्रथमतः तो कौतूहल पैदा करने और उसका शमन करने की एक सुदीर्घ प्रक्रिया है, जिसकी परिणति श्रोता की तृप्ति और प्रसन्नता में होती है। पर उसके बाद वह श्रोता को अज्ञान और बन्धन से मुक्त कर एक बेहतर इनसान बनाती है। यह कथा इस बात की ओर भी संकेत करती है कि 'कथा' के लिखित रूप में कौतूहल के साथ साथ संवेदना का तत्त्व भी मिल जाता है, जो श्रोता को भावमग्न कर देता है। एक बात यह भी सामने आती है कि कथा के 'लिखित' रूप ग्रहण कर लेने पर उसका अधिक प्रचार होता है। कथा के 'लिखित' रूप ग्रहण करने पर उसके विन्यास में जटिलता भी आ जाती है। शिव ने पार्वती को जो कथा सुनायी होगी, उसका रूप–विन्यास कैसा था, यह कहना मुश्किल है। पर अनुमान किया जा सकता है कि उसका विन्यास सरल, इकहरा और 'ऐतिहासिक काल' में गुम्फित घटनाओं का ही रहा होगा। पर गुणाढ्य की जो रूपान्तरित कथा उपलब्ध है उसमें 'कथा' केवल समय की सीधी रेखा में नहीं चलती। एक कथा से दूसरी कथा निकलती है जो अतीत के किसी काल–बिन्दु से आरम्भ होकर सीधी रेखा में चलती हुई, अतीत के ही किसी काल–बिन्दु पर समाप्त हो जाती है या चलती हुई वर्तमान के उस बिन्दु तक आती है जहाँ से वह निकली थी। इस बीच मुख्य कथा का समय स्थगित या जम गया होता है। कथा प्रस्तुत करने की यह जटिल प्रविधि गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' में दिखाई पड़ती है। पुराणों के अनुसार राजा सातवाहन, अतएव गुणाढ्य, का समय ई.पू. 495–490 ई. पू. जबकि आधुनिक विद्वान गुणाढ्य का समय 78 ई. के आसपास निश्चित करते हैं। यदि हम पुराणों द्वारा निर्धारित काल को प्रामाणिक मानें तो गुणाढ्य का समय भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के लगभग 50 वर्ष बाद अनुमानित होगा। लगभग यही समय जातक कथाओं के संकलन ओर लेखन का भी रहा होगा। गुणाढ्य कृत 'बृहत्कथा' आज अपने मूल रूप में उपलब्ध भी नहीं है, यहाँ तक कि ईसा की छठी शताब्दी में राजा दुर्विनीत कृत उसका संस्कृत रूपान्तर भी अब अप्राप्य है। पर जैन कवि संघदास मणि तथा धर्मदास मणि द्वारा किए गए प्राकृत रूपान्तर 'वसुदेवहिंडी', बुद्धस्वामी कृत संस्कृत रूपान्तर 'बृहत्कथा श्लोक संग्रह', क्षेमेन्द्र कृत 'बृहत्कथा मंजरी' और सोमदेव रचित 'कथासरित्सागर' में उसका मूल रूप, कुछ परिवर्तनों के बावजूद, सुरक्षित है। क्षेमेन्द्र और सोमदेव का समय ई. सन् 1029–1064 के बीच माना जाता है। इस प्रकार गुणाढ्य कृत बृहत्कथा 'कथा' के 'मौखिक' से 'लिखित' होने तक के विकास को अच्छी तरह दर्शाती है।

अनुमानतः कथा शिव के मानस में गद्य में 'प्रकाशित' हुई होगी और उन्होंने पार्वती को अपनी कथा गद्य में ही सुनायी होगी, क्योंकि गद्य ही कथा सुनाने का स्वाभाविक माध्यम है। गुणाढ्य ने शिव से सुनी कथा को श्लोकबद्ध किया। उसके पार्वती प्राकृत और संस्कृत रूपान्तर भी श्लोकों में ही हुए। श्लोक या पद्य कथा का प्रकृत माध्यम नहीं है। पर जब लेखन की सुविधाएँ विरल थीं, और कथा को भी स्मृति में ही सुरक्षित रखना पड़ता था तब कथाकार के लिए श्लोक का सहारा लेना उसकी विवशता भी थी। यदि कथा को लोकमानस में 'उद्भूत' माना जाए तो भी उसकी भाषा गद्य ही रही होगी। उसका पद्य रूप बाद में ही आया होगा।

'कथासरित्सागर' कथाओं का संचयन ही है। इन कथाओं में आनेवाली अधिकतर घटनाएँ सामान्य मानवीय अनुभवों से भिन्न, कार्य–कारण की परिधि से बाहर, अप्रत्याशित, आकस्मिक, संयोगाधृत, तक्रनिरपेक्ष, रोमांचक और सदानवीन हैं। इनमें कहीं रक्तस्नान

करने की इच्छुक अलक्तक में रँगी रानी को गरुण मांस–पिंड समझ कर आकाश में लेकर उड़ जाता है ; कहीं कोई आदमी जंगल में हिंस्र जानवरों से बचने के लिए सियारों द्वारा खाए हाथी की खाल में छिप जाता है, तभी वर्षा होने से खाल सिकुड़ जाती है और उस आदमी सहित वर्षा की धारा में बहते बहते पहले गंगा नदी में, और फिर समुद्र में जा पहुँचती है और गरुण उसे मांस समझ कर आकाश में ले उड़ता है और एक टापू में डाल देता है ; कहीं कोई कापालिक श्मशान में शव पर बैठ कर मन्त्र पड़ता है, शव फूत्कार करता है जिससे अग्नि की ज्वाला और सरसों के दाने निकलते हैं, कापालिक मुर्दे को थप्पड़ मारता है, जिससे वह उठ कर चलने लगता है ; कहीं कोई राक्षस किसी आदमी को कन्धे पर बिठाकर आकाशमार्ग से उड़ते हुए किसी पर्वत पर पहुँचा देता है ; कहीं समुद्र में तैरते हुए किसी आदमी को कोई महामत्स्य निगल जाता है, वह आदमी बहुत दिनों तक छुरी से उसके पेट का मांस काट कर खाते हुए जिन्दा रहता है, मत्स्य तैरता हुआ किसी द्वीप पर पहुँचता है, मछुआरे उसे पकड़ कर उसका पेट चीरते हैं और आदमी उसमें से साबुत निकल आता है ; कहीं कोई लड़का श्मशान में पड़े हुए नर–कपाल को लकड़ी के प्रहार से तोड़ डालता है तो उसमें से चरवी की धारा फूट कर उसके मुँह में गिरती है और वह बालक राक्षस बन जाता है ; कहीं कोई पात्र जंगल में चुपके से एक बूढ़े गीध की पाँख के भीतर चिपक जाता है और उसके साथ उड़ते हुए किसी 'कनक नगरी' में पहुँच जाता है ; कहीं कोई पात्र एक जंगली सुअर के पीछे दौड़ते दौड़ते उसके साथ किसी बिल में प्रवेश कर जाता है और वहाँ अपने को किसी सुन्दर उद्यान में पाता है जिसके चारो ओर विशाल भवन बने हुए हैं। एक प्रसंग में एक कथापात्र जंगल में भटक कर एक आश्रम में पहुँचता है। वहाँ उसे एक गुफा दिखाई पड़ती है। जब वह गुफा के भीतर झाँकता है तो वहाँ उसे रत्नों से भरा हुआ एक रमणीय भवन दिखाई देता है। उसके भीतर एक स्त्री बैठी हुई चक्र घुमा रही है। उस चक्र के चारो ओर भौंरे मँड़रा रहे हैं। उसके पास ही एक बैल और एक गधा खड़े हैं। उनके जुगाली करने से दूध और खून का फेन गिर रहा है। गिरते फेन की बूँदें मकड़ियों में बदलती जाती हैं। दूध से बने सफेद फेन से सफेद मकड़ियाँ और खून से बने काले फेन से काली मकड़ियाँ बन रही हैं। वे मकड़ियाँ अच्छे फूलों और जहरीले फूलों पर जाल बुन रही हैं। तभी सफेद और काले दोनो रंगों के फणवाला एक महासर्प आ कर उनको डसने लगता है। तब मकड़ियाँ चीत्कार करने लगती हैं। उनका चीत्कार सुन कर पास में बैठा एक तपस्वी अपने ललाट से ज्वाला छोड़ता है। उस ज्वाला से पाश कट जाते हैं और वे ऊपर जलती चमकती हुई ज्योति में लीन हो जाती हैं। तब वह स्त्री भी उठती है, अपना चक्र उठाती है और अपने साथ उस बैल और गधे को ले कर वहाँ से चली जाती है। बाद में साधु इस घटना का रहस्य उस कथापात्र को समझाता है। इन कथाओं को पढ़ते या सुनते हुए 'अविश्वास' का स्थगन आवश्यक है, श्रोता या पाठक 'यह कैसे हो सकता है?' जैसा प्रश्न नहीं करता, वह केवल यही जिज्ञासा करता है कि 'फिर क्या हुआ?'

गुणाढ्य की कथा में घटनाएँ संख्या में इतनी अधिक और वैविध्यपूर्ण हैं कि वे मिल कर किसी एक सुघटित सम्पूर्ण कथा का निर्माण नहीं करतीं। इनके केन्द्र में एक कथा अवश्य है–– वत्सराज उदयन और उनके पुत्र नरवाहन की कथा––पर उससे जुड़ी कथाओं का मूल कथा से अंगांगी भाव सम्बन्ध नहीं है। वे मिलकर भी एक कथा–शरीर का निर्माण नहीं करतीं, परस्परसम्बद्ध होकर भी वे एक–दूसरे से अलग हैं, स्वतन्त्र हैं। विषय की दृष्टि से उनमें कुछ समानताएँ ढूँढ़ी जा सकती हैं ; जैसे अधिकांश कथाएँ सामन्ती समाज के मिजाज़ का निदर्शन करती हैं। इन कथाओं के अधिकतर पात्र राजा, राजकुमार, सामन्त या वणिक् युवक हैं जो प्रायः रूपवान, वीर, साहसी, प्रेमी, बहुपत्नीगामी हैं। इसी प्रकार इनके अधिकतर स्त्री–पात्र राजकुमारियाँ, विद्याधरियाँ, वणिक् पुत्रियाँ आदि हैं जो

असाधारण सुन्दरियाँ और पुरुष को देखते ही उस पर मर–मिटनेवाली और कामासक्त हो जानेवाली हैं। अपवादस्वरूप कुछ स्त्रियाँ पतिव्रता भी हैं, पर अधिकतर रतिविषयक वर्जनाओं से मुक्त हैं। इन कथाओं के कुछ प्रमुख विषय हैं : संयोग–वियोग का साथ साथ चलना ; धीर–गम्भीर पुरुष का भी विरह में धैर्य खो देना ; शक्तिशाली शत्रु से दुश्मनी मोल लेना और विनाश को निमन्त्रण देना ; विद्या, शक्ति या तन्त्र–साधना से विद्याधर का पद प्राप्त करना ; धूर्तों की माया और प्रपंच–लीला ; मन को पवित्र रखना ; शुभ संकल्पों का शुभ फल होना ; उद्यम का कभी भी त्याग न करना ; धैर्य का सुफल ; राजघराने के लोगों से मैत्री स्थापित करने में सावधानी बरतना ; बहुओं के प्रति सासों की क्रूरता ; भाग्य के अनुकूल होने पर पौरुष द्वारा बड़े से बड़े लक्ष्य की, यहाँ तक कि अमरत्व की भी, प्राप्ति ; नारी चरित्र की गूढ़ता ; स्त्रियों की चरित्रहीनता और स्वभाव की चंचलता ; वेश्याओं की धूर्तता और कपटाचरण ; स्त्रियों को बन्धन में रखने की व्यर्थता ; स्त्रियों का, चाहें तो, अपनी शील–रक्षा में स्वयं ही समर्थ होना ; सभी स्त्रियों का दुराचारिणी न होना, यहाँ तक कि वेश्याओं का भी सदाचारी होना ; पूर्व जन्म के कर्मों और संस्कारों का वर्तमान जन्म पर प्रभाव ; खोयी हुई वस्तुओं की अचानक प्राप्ति ; मूर्खों की हास्यास्पद हरकतें ; मन्त्री की धूर्तता ; सवर्ण और शूद्र जातियों के बीच विवाह–सम्बन्ध ; ब्राह्मणों द्वारा चांडाल के यहाँ भोजन, आदि। इन विषयों में कोई 'एकलता' नहीं है। अधिक से अधिक ये प्राचीन और मध्यकाल के जीवन की झलक प्रस्तुत करती हैं।

भगवान शिव द्वारा पार्वती को सुनायी हुई 'बृहत्कथा' पुष्पदन्त (वररुचि) से यक्ष सुप्रतीक (पिशाच काणभूति) तक होती हुई माल्यवान (गुणाढ्य) को प्राप्त होती है। प्रथम स्तर पर शिव कथक और पार्वती श्रोता हैं। पुष्पदन्त भी छिप कर कथा सुन लेता है। दूसरे स्तर पर पुष्पदन्त वररुचि के रूप में कथक बनता है और सुप्रतीक काणभूति के रूप में श्रोता होता है। यहाँ तक तो वह 'बृहत्कथा' मौखिक रहती है। पर गुणाढ्य माल्यवान उसे श्लोकबद्ध करके लिखित रूप दे देता है। इससे कथा में गुणात्मक परिवर्तन की सम्भावना देखी जा सकती है। अब कथा 'कथित' और 'श्रव्य' न रह कर 'लिखित' और 'पाठ्य' बन जाती है। साथ ही 'लिखित' कथा का 'वाच्य' और 'श्रव्य' रूप भी बना रहता है। 'कथित' कथा के लिखित हो जाने से उसके स्वरूप में स्थिरता आ जाती है। अब श्रोता और श्रावयिता की साथ साथ उपस्थिति और प्रत्यक्ष सम्बन्ध की अनिवार्यता समाप्त हो जाती है। कथा के लिखित रूप में 'कथाकार' श्रावयिता या कथक के रूप में अप्रत्यक्षतः उपस्थित रहता है ; 'कथा' और 'श्रोता' के बीच में पुस्तक आ जाती है। पहले कथा और श्रोता के बीच में कोई जीता–जागता इनसान होता था ; भले ही वह उसके द्वारा निर्मित न हो, पर वह उसे सुनाता अपनी स्मृति से ही था और उसमें कुछ नया जोड़ देने में भी कोई बाधा न थी पर पुस्तक रूप में आते ही श्रावयिता की यह निजता और उसका विशेषाधिकार समाप्त हो जाता है। वह एक ऐसा 'वाचक' बन जाता है जो पूर्वनिर्मित कथा से इधर उधर नहीं जा सकता और यदि श्रोता' 'पाठक' बन जाता है तब तो उसके और कथा के बीच 'वाचक' भी नहीं रहता और लिखित शब्द ही कथा और पाठक को जोड़ने का माध्यम बन जाते हैं।

इसका लाभ यह होता है कि 'कथा' के प्रचार–प्रसार में सहूलियत हो जाती है। शायद भगवान शिव की यही मंशा भी थी अन्यथा उनका गण किस खेत की मूली था कि छिप कर कथा सुन लेता। कथा शिव के मानस में 'प्रकाशित' हुई थी, जिसका लाभ सारे संसार को मिलना ही चाहिए था। पार्वती की चलती तो वह उन तक ही सीमित होकर ही रह जाती। पर अन्ततः वह गुणाढ्य तक मौखिक रूप में पहुँची और उसने उसे लिखित रूप दे दिया। यदि शिव–पार्वती वाली कथा को हम थोड़ी देर के लिए भूल जाएँ तो यह भी

अनुमान करना असंगत न होगा कि गुणाढ्य ने लोक में प्रचलित कथाओं को श्लोकबद्ध कर लिखित रूप दिया। इस प्रकार कथा के विकास का पहला चरण उसके 'मौखिक' से 'लिखित' रूप ग्रहण करने में माना जा सकता है।

जो हो, कथा के लिखित और पद्य रूप ग्रहण करने पर उसके रूप में परिवर्तन अवश्यंभावी था। कोई छोटी सी कथा तो थोड़े से समय में सुना दी जा सकती थी। बारी बारी से बहुत सी कहानियाँ भी कह दी जा सकती थीं। पर किसी बड़ी कथा को लम्बी अवधि तक जारी रखने के लिए उसके विन्यास में कुछ कौशल अपेक्षित था। पहले किसी एक कथा को किसी विशाल वृक्ष के मूल तने के रूप में प्रकल्पित कर लिया। फिर जैसे तने से शाखाएँ–प्रशाखाएँ और टहनियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार मूल कथा से अन्य कथाओं को जोड़ कर एक बृहद् कथावृक्ष का निर्माण हो गया। गुणाढ्य की बृहत्कथा में, जो सम्प्रति कथासरित्सागर के रूप में उपलब्ध है, मूल कथा उदयन और उसके पुत्र नरवाहनदत्त की है। मूल कथा के पहले 'पीठिका' के रूप में शिव की कथा के गुणाढ्य तक पहुँचने की कथा है। तत्पश्चात् कौशाम्बी के राजा सहस्रानीक की कथा आरम्भ होती है। कथा के बीच में कथक संगतक राजा का मन बहलाने के लिए एक कथा सुनाता है, जो राजा की मनःस्थिति के अनुकूल है। यहाँ सहस्रनीक की कथा ठहर जाती है, समय का प्रवाह स्थगित हो जाता है और अतीत के किसी काल–बिन्दु से 'श्रीदत्त की कथा' आरम्भ हो जाती है जिसका अवसान सहस्रानीक के वर्तमान में होता है। सहस्रानीक की ठहरी हुई कथा और उसके साथ जुड़ा काल फिर अग्रसर हो जाता है। सहस्रानीक अपने पुत्र उदयन को राजा बना कर महाप्रयाण करता है और उसके बाद उदयन की कथा चल पड़ती है। उदयन की कथा से भी दूसरी कथाएँ, एक के बाद एक, निकलती हैं और श्रोता वर्तमान से अतीत में जाता आता रहता है। जब तक अन्य कथाएँ अतीत से वर्तमान की ओर आती रहती हैं, उदयन की कथा एक कालबिन्दु पर कीलित रहती है, पर ज्योंही उप–कथाओं का अवसान होता है, उदयन की कथा चल पड़ती है। बड़े कौशल से कथाकार भिन्न भिन्न पात्रों को गौण कथाओं का 'कथक' और श्रोता बना देता है। कभी कभी तो उप–कथा के भीतर भी एक दूसरी उप–कथा निकल पड़ती है और श्रोता का समय–बोध गड़बड़ा जाता है। मूल कथा रुक रुक कर अग्रसर होती रहती है। उदयन के बाद उसके पुत्र युवराज नरवाहनदत्त की कथा आरम्भ होती है, जिसे उसकी पत्नी रत्नप्रभा तथा उसके मित्र मरुभूति, हरिशिख, तपन्तक और गोमुख अपनी अपनी कथाओं से आगे बढ़ाते हैं। कहीं कहीं नरवाहनदत्त के सम्पक्र में आनेवाले अन्य पात्र भी कथा सुनाते हैं। कहीं कहीं तो एक कथा के भीतर, एक के बाद एक, तीन–तीन, चार–चार कथाएँ निकलती जाती हैं। एक प्रसंग में मुनि पिशंगजट नरवाहनदत्त को मृगांकदत्त की कथा सुनाते हैं, जिसके भीतर से, एक के बाद एक, प्रचण्डशक्ति, शापग्रस्त हाथी, भीमभट्ट, क्षपणक आदि की कथाएँ निस्सृत होती हैं और अन्त में नरवाहनदत्त की कथा में मिल जाती हैं। यह कथाओं के गुम्फन का ऐसा कौशल है, जो गुणाढ्य के पहले, कदाचित्, संसार की किसी भी भाषा में नहीं मिलता।

शुद्ध और मौखिक कथा में भाषिक उत्कर्ष के लिए कोई स्थान नहीं होता। कथा की भाषा प्रकृतितः बहुत सरल और बोलचाल की भाषा के निकट होती है। कथा के श्रोता भी प्रायः सामान्य जन या बच्चे होते हैं जिनकी कथा से एकमात्र माँग रोचक और कौतूहल से भरी घटना–श्रृंखला होती है। पर यदि श्रोता कुछ 'विशिष्ट' हुआ और श्रावयिता में भी 'कथा' से ऊपर उठने की ललक हुई तो 'कथा' से सम्बद्ध वर्णनों में भाषिक सर्जनात्मकता आने की सम्भावना बन जाती है। प्रबुद्ध कथाकार 'कथा' को मात्र घटना–श्रृंखला से ऊपर ले जाना चाहता है। इसके लिए वह कथा को वर्णनों से जोड़ता है। वह कथा को थोड़ी देर

के लिए रोक देता है और प्रकृति या पात्र के सौन्दर्य के अंकन में लग जाता है। इसके लिए वह सामान्य व्यवहार की भाषा का प्रयोग न कर शैलीय उपकरणों से सम्पन्न एक ऐसी विशिष्ट भाषा का निर्माण करता है, जो वर्ण्य वस्तु को सजीव बिम्बों में बदल देती है। गुणाढ्य इस कला में माहिर है। उदाहरण के लिए 'वत्स देश' की सुन्दरता का बोध कराने के लिए वह कहता है कि ''वह देश इतना मनोरम है कि लगता है स्वर्ग का अभिमान दूर करने के लिए विधाता ने उसे रचा है।'' ; 'वहाँ उसने बिंबकि नामक राजा की कन्या को देखा जो साक्षात् वसन्त की शोभा के समान थी।' ; 'नगरी क्या है धरती का गहना है। अपनी ऊँची ऊँची अटारियों से वह नगरी अमरावती की हँसी उड़ाती लगती है।' ; 'वह वन्य शूकर देखने में ऐसा लगता था, जैसे दिन में रात का सारा अँधेरा एक पिंड बन कर जमा हो गया हो।' ; 'उनके स्वागत में कौशाम्बी नगरी नयी वधू की भाँति सजायी गयी थी।' ; 'कौशाम्बी इस तरह सजी हुई थी, जैसे कोई रमणी प्रवास पर गए हुए अपने पति के लौट कर आने पर उसके स्वागत में सजी हुई हो। सारे भवनों के झरोखे खुले थे, मानो अपने राजा को निहारने के लिए नगररमणी ने असंख्य आँखें खोली हों। सफेद चूने से पुते भवनों के द्वारा सारी नगरी हँसी से खिलखिलाती लगती थी।' ; 'राजकुमारी क्या थी, यौवन के मद से उफनती सी या फूलों के लद जाने से झुक झुक पड़ती लता जैसी लगती थी– इस प्रकार के सैकड़ों वाक्य 'बृहत्कथा' में भरे हुए हैं, जो वर्णनों को सजीव बिम्बों में बदल देते हैं।

दुहराने की आवश्यकता नहीं कि सर्जनात्मकता की दिशा में यह कथा की यात्रा का दूसरा चरण है, जिसके उदाहरण संस्कृत साहित्य में, अन्यत्र भी, भरे पड़े हैं।

'कथा' को 'उपदेश' या 'शिक्षा' से जोड़ने का इतिहास भी कदाचित् कथा की तरह ही पुराना है। सम्भव है कि आदि मानव भी शिकार की कथाएँ सुनाकर अपने बच्चों को सम्भावित खतरों से बचने का उपदेश देता रहा हो। ज्ञात भारतीय परम्परा में सर्वप्रथम वेदों में कथा का उपयोग ज्ञान या चिन्तन को सुग्राह्य बनाने के लिए किया गया है। उपनिषदों में इस परम्परा का विकास देखा जा सकता है। पर उपदेश या शिक्षा के लिए बड़े पैमाने पर कथा के उपयोग का सबसे पुराना उदाहरण जातक कथाएँ हैं। कथासरित्सागर में भी यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। इसकी अधिकतर कथाओं में जीवन में धैर्य से काम लेने, असफल होने पर भी प्रयत्न न छोड़ने, वेश्याओं और धूर्तों से सावधान रहने, प्रिय से वियोग हो जाने पर भी आशा का त्याग न करने, अधिक सन्तान पैदा न करने, मन को पवित्र रखने, शुभ संकल्प के साथ उद्यम करने, साहसी बनने, राजपुरुषों से मित्रता करने में सावधानी बरतने, स्त्रियों का सहेली के पति से न मिलने, बल के अपर्याप्त होने पर युक्ति से काम लेने, भाग्य के अनुकूल होने पर पौरुष आजमाने, अपने पूर्वजन्म के शुभाशुभ कर्मों पर विश्वास करने, पराक्रमी व्यक्ति के सदा विजयी होने आदि के उपदेश दिये गये हैं।

13.5 'पंचतन्त्र' और 'हितोपदेश'

कथा को उपदेश का माध्यम बनाने का एक बढ़िया उदाहरण पं. विष्णु शर्मा द्वारा रचित पंचतन्त्र है, जिसकी रचना पहली शताब्दी ईसवी के आसपास हुई थी। पंचतन्त्र की रचना एक राजा के 'जड़ बुद्धि', 'अविनीत, उच्छृंखल और मूर्ख' राजकुमारों को 'राजनीति और व्यवहार–नीति' की शिक्षा देने के लिए हुई थी। यह भी कथाओं का संकलन ही है। यह पाँच प्रकरणों में विभक्त है। प्रत्येक प्रकरण में परस्परगुम्फित अनेक कहानियाँ हैं, जो एक ही विषय का प्रतिपादन करती हैं। इसकी एक विशेषता यह है कि यह पशु–पक्षियों की कथा है। इस कथा के पशु–पक्षी मनुष्य की तरह आचरण करते हैं और भाषा भी मनुष्य

की ही बोलते हैं। बाल–मन इसमें कोई असंगति नहीं देखता, क्योंकि वह 'कथा' में यह नहीं पूछता कि 'ऐसा कैसे हुआ?' ; बल्कि यह पूछता है कि 'फिर क्या हुआ?' अविश्वास बाल–मन में नहीं होता। शुद्ध कथा–श्रोता की भी यही विशेषता होती है। 'कार्य–कारण' सम्बन्ध की दृष्टि से पंचतन्त्र की कथाओं में असंगतियाँ भरी हुई हैं। कौतूहल का तत्त्व ही कथा को आगे बढ़ाता है। पर उसकी प्रत्येक कथा किसी न किसी प्रयोजन से निर्मित है। उसमें कथा गौण है, प्रयोजन ही प्रधान है। यह भी कथा के विकास का एक चरण है, जो वर्णन की सर्जनात्मकता के समानान्तर अग्रसर हुआ है। एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि पंचतन्त्र में भाषिक सर्जनात्मकता पैदा करने की कोई कोशिश नहीं दिखाई पड़ती। कारण यह है कि यह केवल बच्चों के निमित्त निर्मित है, जिनकी भाषिक सर्जनात्मकता में कोई रुचि नहीं होती। 'पंचतन्त्र' से पहले संकलित जातक कथाओं में कथा सुनाने वाले स्वयं भगवान बुद्ध हैं और श्रोता भिक्षु–गण। सारी कथाएँ अलग–अलग ही हैं। पंचतन्त्र की कथाओं के मुख्य कथक विष्णुशर्मा और श्रोता राजकुमार हैं। घटनाएँ इतनी रोचक हैं कि राजकुमार आगे की कथा सुनने के अपने कुतूहल को रोक नहीं पाते। केन्द्रीय कथा किसी पशु या पक्षी समुदाय की होती है, जिसके पात्रों को कथक बना कर परत–दर–परत अन्य कथाएँ सुनायी जाती हैं। उपदेशों में बालकों की रुचि बिलकुल नहीं है और विष्णु शर्मा इसे अच्छी तरह जानते हैं। वे पशु–पक्षियों से सम्बद्ध कथाओं को कुतूहल से भर देने की कला में माहिर हैं। पर इसके साथ ही वे उनमें 'शिक्षा' के तत्त्व भर देने की कला में भी माहिर हैं। छह महीने बीतते–बीतते कथा तो समाप्त हो जाती है, पर राजनीति और व्यवहार–नीति के उपदेश राजकुमारों के मन पर अंकित हो जाते हैं। 'कथाकार' को 'कथा' की उपयोगिता का पता चल जाता है। कथा के परवर्ती विकास में 'कथाकार' के इस ज्ञान का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

'हितोपदेश' मोटे तौर पर 'पंचतन्त्र' का स्वतन्त्र निरूपण और प्रस्तुतीकरण है। इसके लेखन का समय सुनिश्चित नहीं है। संस्कृत पाठ में दी गयी पुश्पिका(अन्तिम पृष्ठ पर दी जाने वाली सूचना) के अनुसार इसकी रचना नारायण पंडित ने की थी, जो किसी धवलचन्द्र नामक राजा के राज्याश्रित पंडित या गुरु थे। किसी भी अन्य सूत्र से नारायण पंडित या उनके आश्रयदाता राजा का पता नहीं चलता। कुछ स्रोत उनका समय बारहवीं शताब्दी और कुछ 1675 ई. बताते हैं, पर यह अनुमान मात्र है। 'पंचतन्त्र' के समान इसकी रचना भी गद्य–पद्य मिश्रित रूप में हुई है और प्रधानतः उपदेश–कथाओं का संकलन है। पंचतन्त्र की तरह इसमें भी किशोर राजकुमारों को राजनीति और व्यवहारनीति के उपदश विभिन्न कथाओं के माध्यम से दिये गये हैं। स्वयं नारायण पंडित ने कहा है कि 'हितोपदेश' की रचना का मुख्य उद्देश्य किशोरों को इस प्रकार की शिक्षा देना है कि वे व्यवहार–नीति सीख सकें और जिम्मेदार युवकों के रूप में विकसित हो सकें। राजनीति के अन्तर्गत युद्ध और सन्धि तथा इस कार्य में होने वाले सहायकों के चयन में बरती जाने वाली नीतियों पर विशेष ध्यान दिया गया है। ये बातें 'पंचतन्त्र' में भी हैं, पर 'प्रचतन्त्र' की तुलना में यह अधिक सरल और रोचक शैली में लिखा गया है। इसकी अनेक कथाएँ 'पंचतन्त्र' से ली गयी हैं, पर नारायण पंडित ने कई कथाओं की कल्पना स्वयं भी की है। 'पंचतन्त्र' की कथाओं को भी उन्होंने नये ढंग से प्रस्तुत कर उन्हें अधिक प्रवाहपूर्ण और ग्राह्य बना दिया है। इसलिए इसे 'पंचतन्त्र' का मात्र सरलीकरण नहीं कहा जा सकता, पुनर्लेखन भले ही कह लें। कथ्य और संरचना में समान होने पर भी 'हितोपदेश' 'पंचतन्त्र' की तुलना में अधिक व्यावहारिक माना जाता है।

'हितोपदेश' 'पंचतन्त्र' से स्वतन्त्र ग्रन्थ होने के बावजूद कथ्य और संरचना की दृष्टि से भारतीय कथा–परम्परा में किसी विकास का सूचक नहीं है।

13.6 सुबन्धु कृत 'वासवदत्ता'

ऐतिहासिक दृष्टि से 'पंचतन्त्र' के बाद कथा–रचना की परम्परा में सुबन्धु का नाम आता है। 'रोमांस' का विकास यूरोप में भले ही बाद की घटना हो, भारत में उसका विकास 'बृहत्कथा' से ही माना जा सकता है। बृहत्कथा की कथाएँ यूरोपीय 'रोमांस' की सारी विशेषताओं से युक्त हैं। कोई कमी है तो किसी एकल कथा की। यह कमी ई. सन् 500 या उसके कुछ पूर्व विद्यमान सुबन्धु की वासवदत्ता द्वारा पूरी होती है। पर वासवदत्ता की कथा आकार में भले ही 'पर्याप्त लम्बी' या एक पूरी पुस्तक को निर्मित करने वाली हो, खुद में वह बहुत क्षीण है। वस्तुतः सुबन्धु का सारा जोर कथा के पात्रों और उनके परिवेश के, अपने काल के काव्यरसिकों की रुचि के अनुरूप 'काव्यगुणों' से सम्पन्न, सविस्तार वर्णनों पर है। सुबन्धु को केवल इस बात का श्रेय दिया जा सकता है कि उन्होंने गुणाढ्य की तरह अपनी कथा पद्य में न प्रस्तुत कर गद्य में प्रस्तुत की और कथा को उन समस्त साहित्यिक विशेषताओं से युक्त कर दिया जिसका एकाधिकार केवल कवियों को प्राप्त था। यह एक तरह का ऐसा प्रयोग था, जिसका साहस किसी अन्य गद्यलेखक ने नहीं किया था।

13.7 बाणभट्ट कृत 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित'

सुबन्धु के बाद 'कथा' को एक नया आयाम प्रदान करने वाले लेखक बाणभट्ट हैं। कथा की दृष्टि से 'कादम्बरी' गुणाढ्य की बृहत्कथा की एक कथा––जो कथासरित्सागर में 'मकरन्दिकोपाख्यान' के रूप में उपलब्ध है––पर आधारित है, पर बाणभट्ट ने अपने कथासंसार को अपने 'विज़न' के अनुरूप बिलकुल नया रूप दे दिया है। इसका कथाविन्यास अद्भुत रूप से नया और आश्चर्यचकित करनेवाला है। यद्यपि 'कथा के भीतर कथा' की विन्यास–कला गुणाढ्य की बृहत्कथा और विष्णु शर्मा के पंचतन्त्र में ही विकसित हो चुकी थी पर बाणभट्ट ने पहली बार परस्पर गुँथी कथाओं को कथा की एकल इकाई में परिणत करने में सफलता प्राप्त की थी। कहना न होगा कि कथा के भीतर कथा की योजना द्वारा अपने पूरे विज़न को किसी एकल कथासंसार में रूपायित कर देना कथा–प्रतिभा का ऐसा चमत्कार था जो अब तक संसार की किसी भी भाषा में सम्भव नहीं हुआ था। इसके पहले गुणाढ्य ने, और कुछ दूर तक विष्णु शर्मा ने भी, छोटी छोटी कथाओं को एक दूसरे के भीतर नियोजित करके एक बड़ी कथा निर्मित करने का प्रयास किया था, जिसके केन्द्र में कोई एक 'विषय' होता था पर किसी बड़े और प्रकाशमान 'विज़न' की अभिव्यक्ति के लिए एक के भीतर एक गुम्फित कथाओं द्वारा 'पर्याप्त बड़े आकार' की, पूरी पुस्तक को निर्मित करने वाली, कथा का निर्माण अब तक किसी कथाकार ने नहीं किया था। बाणभट्ट ने 'कादम्बरी' के अतिरिक्त जो दूसरी महत्त्वपूर्ण रचना की थी, उसका नाम 'हर्षचरित' है। 'हर्षचरित' में वर्ध वंश श्रीहर्ष का, जो एक प्रतापी सम्राट था और भारतीय इतिहास में उसे अन्तिम महान शासक के रूप में स्वीकार किया गया है, चरित्र प्रस्तुत किया गया है।

13.8 दंडी कृत 'दशकुमारचरित'

बाणभट्ट के बाद संस्कृत कथाकार दण्डी ने 'दशकुमारचरित' नामक 'पुस्तकाकार कथा' की रचना की। 'दशकुमारचरित' में दस राजकुमारों की अनुभव–कथाएँ अलग–अलग वर्णित हैं, जिन्हें आपस में जोड़ने वाला कथापात्र मगध राजकुमार राजवाहन है। पर ये

कथाएँ मिलकर किसी एक सुसम्बद्ध कथानक का निर्माण नहीं करतीं। कहा जा सकता है कि परस्परभिन्न कथाओं को जोड़ने की दिशा में यह भी एक उल्लेखनीय प्रयास था, यद्यपि कादम्बरी की तुलना में यह कहीं नहीं ठहरता।

13.9 संस्कृत कथा–परम्परा का अवसान

दसवीं सदी में धनपाल ने तिलकमंजरी के रूप में कादम्बरी की परम्परा को जीवित करने का प्रयत्न तो किया पर संरचना की दृष्टि से उसे भी कादम्बरी का विकास नहीं कहा जा सकता।

दसवीं शताब्दी के बाद धीरे–धीरे संस्कृत को राजाश्रय प्रदान करनेवाले हिन्दू राज्य समाप्त हो गये, इस कारण संस्कृत काव्य की परम्परा लगभग लुप्त हो गयी।

13.10 सारांश

संस्कृत में कथा–परम्परा का आरम्भ वेदों से ही हो जाता है। उपनिषद् और पुराण उसकी अगली कड़ी हैं। महाकाव्य के रूप में वाल्मीकि कृत 'रामायण' में राम–कथा प्रस्तुत की गयी है। 'महाभारत' का रचना–काल ई पू. सन् 800–100 माना जाता है। यों तो इसकी मुख्य कथा शान्तनु–वंशज पांडवों और कौरवों के सम्बन्धों और युद्ध की है, पर मुख्य कथा के साथ इतने उपाख्यान जुड़े हुए हैं कि इसे उपाख्यानों का महाकोश भी कहा जा सकता है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थों का वर्णन किया गया है। इसे भारतीय इतिहास का जाज्वल्यमान दीपक कहा गया है।

जातक कथाओं के रूप में भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को अपने पूर्वजन्म की कथाएँ सुनायी थीं। इन कथाओं का संकलन ई. पू. छठी शताब्दी में कभी हुआ होगा। इसमें कुल 547 कथाएँ संकलित हैं। सारी कथाएँ अलग–अलग हैं। इसमें कथा के भीतर कथा या कथाओं की योजना नहीं की गयी है। इसकी अधिकतर कथाओं में जीवन में धैर्य से काम लेने, असफल होने पर भी प्रयत्न न छोड़ने, वेश्याओं और धूर्तों से सावधान रहने, प्रिय से वियोग हो जाने पर भी आशा का त्याग न करने, अधिक सन्तान पैदा न करने, मन को पवित्र रखने, शुभ संकल्प के साथ उद्यम करने, साहसी बनने, राजपुरुषों से मित्रता करने में सावधानी बरतने, स्त्रियों का सहेली के पति से न मिलने, बल के अपर्याप्त होने पर युक्ति से काम लेने, भाग्य के अनुकूल होने पर पौरुष आजमाने, अपने पूर्वजन्म के शुभाशुभ कर्मों पर विश्वास करने, पराक्रमी व्यक्ति के सदा विजयी होने आदि के उपदेश दिये गये हैं। जातक कथाओं की भाषा पालि है। इसमें उपदेश–वचन तो श्लोक में निबद्ध हैं, पर कथा गद्य में कही गयी है।

कथा को उपदेश का माध्यम बनाने का एक बढ़िया उदाहरण पं. विष्णु शर्मा द्वारा रचित पंचतन्त्र है, जिसकी रचना पहली शताब्दी ईसवी के आसपास हुई थी। पंचतन्त्र की रचना एक राजा के 'जड़ बुद्धि', 'अविनीत, उच्छृंखल और मूर्ख' राजकुमारों को 'राजनीति और व्यवहार–नीति' की शिक्षा देने के लिए हुई थी। यह भी कथाओं का संकलन ही है। यह पाँच प्रकरणों में विभक्त है। प्रत्येक प्रकरण में परस्परगुम्फित अनेक कहानियाँ हैं, जो एक ही विषय का प्रतिपादन करती हैं। इसकी एक विशेषता यह है कि यह पशु–पक्षियों की कथा है। उसकी प्रत्येक कथा किसी न किसी प्रयोजन से निर्मित है। उसमें कथा गौण है, प्रयोजन ही प्रधान है। केन्द्रीय कथा किसी पशु या पक्षी समुदाय की होती है, जिसके

पात्रों को कथक बना कर परत–दर–परत अन्य कथाएँ सुनायी जाती हैं। इन कथाओं में अधिकतर राजनीति के उपदेश निबद्ध किये गये हैं।

'हितोपदेश' 'पंचतन्त्र' से स्वतन्त्र रचना होने पर भी कथ्य और संरचना की दृष्टि से भारतीय कथा–साहित्य मे किसी विकास का सूचक नहीं है।

अभ्यास

1. संस्कृत में कथा–परम्परा के आरम्भ और विकास का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. उपदेश–कथा के रूप में जातक–कथाओं का परिचय दीजिए।
3. भारतीय कथा साहित्य में गुणाढ्य कृत 'बड्डकहा' का महत्त्व प्रतिपादित कीजिए।
4. 'पंचतन्त्र' और 'हितोपदेश' का परिचय देते हुए उपदेश–कथा के रूप में उनका महत्त्व बताइए ।
5. कथा–शिल्प के विकास में जातक कथाओं, 'कथासरित्सागर', 'पंचतन्त्र' और 'कादम्बरी' की भूमिका का विवेचन कीजिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY